ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 172-173

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

समकालीन हिंदी कविता के आईने में 21वीं सदी का चेहरा

डॉ0 राम अधार सिंह यादव E-mail: yramadhar64@gmail.com

Received- 10.02.2021, Revised- 13.02.2021, Accepted - 17.02.2021

सारांश : ***सन 2000 में प्रकाशित विनोद कुमार शुक्ल के कविता संग्रह "अतिरिक्त नहीं" में संग्रहित कविता " अपने हिस्से में लोग आकाश देखते हैं" की आखरी पंक्तियां नई सदी के यथार्थ पर एक सार्थक टिप्पणी करती हैं– 'बाजार में जो दिख रही है, तंदूर में बनती हुई रोटी, सबके हिस्से की बनती हुई रोटी नहीं है। जो सब की घड़ी में बज रहा है , वह सबके हिस्से का समय नहीं है। इस समय "("अतिरिक्त नहीं"/पृष्ठ 17)***

कुंजीभूत शब्द– अर्थव्यवस्था, उदार, समाज, खरीददार, भूमंडलीकरण।

"इस समय" से यह अर्थ ध्वनित हो रहा है कि जो होना चाहिए था, वह नहीं हो रहा है । हो ना इसलिए चाहिए था कि आज पूरा विश्व एक ग्राम बन गया है। देश और काल सिमट गए हैं। अर्थव्यवस्था उदार हो गई है ,फिर तंदूर में बनती हुई रोटी सबके हिस्से की रोटी क्यों नहीं है? कारण स्पष्ट है, क्योंकि रोटी बाजार में बन रही है समाज में नहीं। बाजार में उसी का महत्व है जो खरीददार है। भूमंडलीकरण ने एक ऐसे समाज का निर्माण किया है जो मात्र उपभोक्ता है। सामान्य जन यहां गौण है । अभिजन और श्रेष्ठ जन प्रमुख हैं। यहां केवल पूजी स्वतंत्र है, जनता पराधीन है। आज सबसे अधिक महत्वपूर्ण पैसा हो गया है। औद्योगिक क्रांति ने मनुष्य को मजदूर बनाया, तकनीकी क्रांति ने यंत्र और भूमंडलीकरण या सूचना क्रांति ने उसे वस्तु बना दिया, जो बाजार में खरीदा और बेचा जा रहा है। मनुष्य अन्दर से खोखला होता जा रहा है। वह जिंदा होकर भी जिंदा नहीं है और कविता इसलिए जिंदा है कि वह मनुष्य को जिंदा रखना चाहती है।

हिंदी कविता कभी भी लूट, शोषण ,अन्याय, पूंजीवाद और बाजारवाद के पक्ष में नहीं रही है। वह हमेशा मानवीय – मूल्यों को बचाने के लिए संघर्ष करती रही है। 1882 ईसवी में ही भारतेंदु हरिश्चंद्र ने "अंधेर नगरी" नाटक में पूँजी को ही सबकुछ मान लेने की मनुष्य की अमानवीय दृष्टि पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि टके के वास्ते हम सब कुछ अपना बेच दे रहे हैं। साठ और सत्तर के दशक में हिंदी कविता में जिस प्रकार "संसद" "लोकतंत्र" "संविधान" जैसे शब्दों की भरमार थी ,उसी प्रकार आठवें और नब्बे के दशक की कविताओं में तीव्रता से बदलती हुई दुनिया में जीते हुए मनुष्य की संवेदना का आख्यान है । समकालीन कवि विनोद कुमार शुक्ल के शब्दों में– **" बचा कर रख लेनी चाहिए हवा, सांस लेने के लिए , दूर नल से पानी लाते हैं, वैसे ही नालियों, दुर्गंध से दूर जाकर एक साबुत घड़ें में शुद्ध हवा लानी चाहिए। शाम को थके हारे मेहनत मजूरी से लौटने के बाद, अपने बच्चों पत्नी के साथ, सांस रोककर, घर से दूर भागने का अभ्यास करना चाहिए, और भागते हुए अपने शहर के भोपाल से बाहर चले जाना चाहिए। रात में तकिए के नीचे, चार आठ आने रेजगारी के साथ, नींद बचाकर रख लेनी चाहिए, और जागते रहना चाहिए। घटते– घटते जीवन इतना ही बचा है , भरपूर जीवन की लड़ाई के लिए, जीवन को कितना और कैसे बचा होना चाहिए ?"(" अतिरिक्त नहीं"/ पृष्ठ 112)**

आज जीवन जीने का प्रश्न नहीं, जीवन बचाने का प्रश्न है। स्वाभाविक है जीवन नहीं बचेगा तो भाषा का बचना मुश्किल है। भाषा जीवन से अलग नहीं है और न जीवन भाषा से। भाषा और जीवन की संवेदना को एक साथ जोड़ कर समकालीन कवि उदय प्रकाश कहते हैं " **चिंता करो मूर्धन्य "ष" की, किसी तरह बचा सको तो बचा लो "ड़' देखो कौन चुरा के लिए जा रहा है खड़ी पाई, और नागरिक के सारे अंक, जाने कहां चला गया ऋषियों का "ऋ"।"**

पूरी कविता में अपनी सांस्कृतिक धरोहर को बचाने का तनाव व्याप्त है । कविता की अंतिम पंक्ति में कवि कहता है–"इधर मैं एक बार फिर करता हूं प्रयत्न,
कि बच सके तो बच जाये हिंदी में समकालीन कविता।"(ताना–बानाध्सम्पादकध् केदारनाथ सिंह/पृष्ठ 562)

समकालीन कविता में समकालीन कविता को बचाने का कवि का यह प्रयत्न बदलते हुए प्रदेश की विडंबना पर एक गहरी चोट है।

21वी सदी का चेहरा मुख्य रूप से धार्मिक कट्टरतावाद और उग्रवाद से निर्मित है। समकालीन हिंदी कविता ने इसे गंभीरता से उठाया है। राम –रावण युद्ध के समय जब रावण राम के समक्ष रथारूढ़ होकर आता है तो राम को रथ विहीन देखकर विभीषण चिंतित हो जाते हैं और अधीर होकर राम से कहते हैं –" हे नाथ आपके न रथ है न तन की रक्षा करने वाला कवच है और न जूते ही है। वह बलवान वीर रावण कैसे जीता जाएगा ?

" प्रभु राम ने कहा–" जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं। सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दम और परोपकार ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े गए हैं। ईश्वर का भजन ही चतुर

एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, एस0 एम0 कालेज चन्दौसी, सम्भल, (उ0प्र0), भारत

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

सारथि है, वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है। श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल और अचल मन तरकस के समान है। शम, यम और नियम– ये बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। हे सखे ! ऐसा धर्ममय रथ किसके पास है उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है। अजेय धर्ममय रथ को आज भूमंडलीकरण निगल गया है, और जो रथ नया बना है उसका स्वरूप इस प्रकार है–

नफरत की रबड़ से बने मजबूत टायर, और द्वेष के ट्यूब से सजे हैं मेरे रथ के पहिए, और इनमें भरी अंध राष्ट्रवाद की हवा के क्या कहिए! अद्भुत है इसका एयर कंडीशनर कि बाहर जितनी तेज होती है आग और जितना ज्यादा होता है मारण– मरण उतना ही ठंडा होता है भीतर का वातावरण, खून का ईंधन पीकर, दंभ का इंजन खींचता है इसे। खून जितना ज्यादा होता है लाल, उतनी ही तेज होती है मेरे रथ की चाल। रथ जितना तेज चलता है, इस पर लगा झूठ – कूट का ध्वज उतनी उतनी ही तेजी से लहराता है। उसका लहराना देखकर, विधर्मियों का मन कांप–कांप जाता है, सखा, धर्ममय अस रथ !

कौन रोक सकता है इसका पथ ? "(हंस/सम्पादक/ राजेन्द्र यादव/अघ्क–5/दिसम्बर 2002/ अरुण आदिल की कविता/पृष्ठ 51)

इस भूमंडलीय संस्कृति में पृथ्वी घर नहीं बाजार है । अब एक देश उपनिवेश नहीं है, पूरी पृथ्वी उपनिवेश बन गई है, इसी अर्थ में सीमाएं टूटी हैं, धरातल टूटा है, संबंध विखरे हैं, इतिहास का अंत हुआ है, विचारधारा का अंत हुआ है और मूल्य बिक रहे हैं, भाषा संकट में है, साहित्य खतरे में है, अब तो वही इस अंत की घोषणा कर सकता है अथवा इस नए धर्ममय रथ को रोक सकता है जिसमें बाजार से लड़ने की ताकत हो, शब्द और आचरण में एकता स्थापित करने की अपार ऊर्जा हो,अपना सबकुछ दूसरों के लिए लुटा देने का सामर्थ्य हो और कर्तव्य के प्रति समर्पित निष्ठा की पराकाष्ठा हो। कवि के शब्दों में" तुम्हारे गुमाश्तों ने बढ़–चढ़कर बोलियां बोली, और सारे बाजार को खरीद लिया, मैं निहत्था आगे बढ़ा और अपने को मुफ्त लुटा दिया, हम दोनों ही इसी शताब्दी की उपज हैं, तुम जितनी बार आदमी की कीमत लगाते हो मैं उतनी ही बार, अपने को मुफ्त लुटा देता हूं , देखो पहले कौन दिवालिया होता है? "(ताना–बाना कविता संग्रह संपादक केदारनाथ सिंह/पृष्ठ 478)

बाजार को ही दिवालिया बनाना है क्योंकि हमारे पास वह शक्ति है, जिससे हम बाजार से लड़ सकते हैं, बस जरूरत है उसे सही दिशा में प्रयोग करने की। समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर कवि केदारनाथ सिंह के शब्दों में– "अब तुम, अपने गुस्से को निकाल कर हथेली पर रख सकते हो, देख सकते हो कि उसमें कितना तेजाब , और कितनी बाजार की धूल है। ("अस्मिता"/संपादक/डॉ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एवं जितेंद्र नाथ पाठक/ पृष्ठ 39)

इक्कीसवीं सदी का चेहरा अमानवीय है, इसमें दो राय नहीं है किन्तु उसे मानवीय बनाने का दायित्व हमारे ऊपर है,– इसमें भी दो राय नहीं है। मनुष्य होने के नाते यह दायित्व हमें उठाना होगा और पृथ्वी को मनुष्य विहीन होने से बचाना होगा। समकालीन कवि और उसकी कविता को पूर्ण विश्वास है कि मनुष्य भी रहेगा और पृथ्वी भी रहेगी।

मुझे विश्वास है, यह पृथ्वी रहेगी, यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में, यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में, रहते हैं दीमक, जैसे दाने में रह लेता है घुन, यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अंदर, यदि और कहीं नहीं तो मेरी जबान, और मेरी नश्वरता में, यह रहेगी, और एक सुबह मैं उठूँगा, और उठूंगा पृथ्वी समेत, जल और कच्छप समेत मैं उठूंगा, मैं उठूँगा और चल दूंगा उससे मिलने, जिससे वादा है कि मिलूंगा "(केदारनाथ सिंह /प्रतिनिधि कविताएं/ संपादक प्रोफेसर परमानंद श्रीवास्तव/ पृष्ठ 14– 15)

कवि का यही "विश्वास" और "संकल्प" जीवन की एक ऐसी सकारात्मक ऊर्जा है, जिसके द्वारा बाजार में बदलती हुई इस दुनियाँ का सामना आसानी से किया जा सकता है।

*****